International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 841-842

18वीं शताब्दी बीकानेर में पट्टेदारो के किसानों के साथ सम्बन्ध

सुरेन्द्र सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मदवि, रोहतक, हरियाणा, भारत।

सारांश

बीकानेर राज्य में पट्टाप्रणाली सामन्तवादी व्यवस्था का ही एक रूप थी। जो कि मुग़ल कालीन जागीरदारी के समान थी। पट्टेदारों को राज्य की सैनिक सेवा के बदले में पट्टे प्राप्त होते थे। पट्टेदारों के पट्टे में कृषक कार्य करते थे। इसलिए पट्टेदारों और कृषकों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। पट्टेदार औ कृषक दोनों के समृद्ध जीवन का आधार कृषि था। इसलिए पट्टेदार व कृषकों के साथ उचित व्यवहार जरूरी था। लेकिन पट्टेदारों की शोषण करने की प्रवृत्ति के कारण यह सम्भव नहीं था। पट्टेदार एवं किसानों के पारस्परिक सम्बन्धों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि कृषकों के साथ पट्टेदार उचित व्यवहार नहीं करता था।

मुख्य शब्द : सामाजिक जीवन, पट्टेदार, ज़ागीरदार, कृषक, ठिकाणे

प्रस्तावना

बीकानेर के सामाजिक जीवन में कृषक का जीवन व उसके सम्बन्ध वहां की परिस्थितियों पर निर्भर थे। बीकानेर में कृषकों के पट्टेदारों से ठीक वैसे ही सम्बन्ध थे जैसे कि मुगलकाल में ज़ागीरदारों के साथ, बीकानेर राज्य में पट्टेदार अपने ठीकानों पर अत्यन्त शक्तिशाली होते थे। वे अपने ठिकाणे में शासक के प्रतिरूप थे। प्रत्येक पट्टेदार अपने आप परिवार का पाटवी होने के कारण सारी जमीयत को अपने झण्डे के नीचे एकत्रित करता था। वह अपने क्षेत्र में समस्त दीवानी व फौजदारी का मुख्य न्याधिकारी होता था तथा सम्पूर्ण ठिकाने के कर उसके खजाने में जमा होते थे। वह अपने ठिकाने की समस्त भूमि का स्वामी होता था तथा उसे अपनी निजी सम्पत्ती समझता था।[1] वह अपने ठिकाने में जगात वसूली के अधिकार भी रखता था जिस पर बीकानेर के शासकों का नियन्त्रण होता था।[2]

पट्टेदारों और कृषकों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। पट्टेदार और कृषक दोनों के समृद्ध जीवन का आधार कृषि था। खेती के विस्तार एवं कृषकों की संख्या में वृद्धि से पट्टेदार अधिक धन तथा असामियों की सद्भावना एवं स्वामित्व, भक्तिपूर्ण सेवाएँ भी प्राप्त करता था। शासन की ओर से भी पट्टेदार को अधिक से अधिक भूमि पर खेती कराने एवं रैयत के साथ सद्व्यवहार करने का निर्देश दिया जाता था।[3] पट्टेदार स्वयं भी कृषकों की महता को समझता था। अतएव उनका यह प्रयास होता था कि कृषक के साथ सद्व्यवहार किया जाए ताकी वह जमीन छोड़कर अन्यत्र भागने के लिए बाध्य न हो। ऐसा अक्सर हो जाता था जब किसान जमीन छोड़कर भाग जाता था क्योंकि उस समय जमीन की कोई कमी नहीं थी।[4] यद्यपि कृषकों की कमी को ध्यान में रखकर पट्टेदार, काश्तकारों को भूमि छोड़ने से रोकने और ली हुई सारी कृषि योग्य भूमि में खेती करने के लिए बाध्य करने के अधिकार का भी प्रयोग करता था। वह कृषकों को अपनी पट्टेदारी में बसने के लिए वे प्रेरित करता था और उसके लिए विभिन्न प्रकार की जरूरी सहायता देने के लिए तैयार रहता था। वह कृषकों को निवास हेतु ग्राम में भूमि, घर बनाने के लिए आवश्यक बांस आदि की निःशुल्क सहायता, खेती करने के लिए ऋण, भू–राजस्व को सरल किश्तों में भुगतान की सुविधा, प्राकृतिक विपत्तियों में राजस्व आदि में छूट तथा ऋण आदि दिया करता था।[5] पट्टेदार कृषकों के हितों की रक्षा करने पर ध्यान दिया करते थे। किन्तु फिर भी पट्टेदार की रक्षा करने पर ध्यान दिया करते थे। किन्तु फिर भी पट्टेदार को कृषकों का विश्वास प्राप्त नहीं था और वे परस्पर एक दूसरे को अविश्वास की भावना से देखते थे। इसका एक मात्र कारण पट्टेदारों की शोषण करने की प्रकृति थी।[6]

बीकानेर के ठिकानों की कागद बहियों के अनुसार शासकों द्वारा जिस काश्तकार को पट्टा (मोहरछाप लिखत कागद) प्रदान किया जाता था। वह उस भूमि पर जोतने के वंशानुगत अधिकारों का प्रयोग कर सकता था।[7] काश्तकार अथवा आसामी के निःसन्तान होने पर उसकी पत्नि एवं उसके पश्चात् निकटवर्ती संबंधी उस भूमि को जोतने के अधिकार पाते थे। भूमि सम्बन्धी किसी विवाद पर गाँव के चौधरी व पंचायत की भूमिका निर्णायक होती थी। यदि कोई आसामी किसी विपदा के कारण अपनी भूमि छोड़कर बाहर भी चला जाता तो भी उसके भू–स्वत्व अधिकार समाप्त नहीं होते थे। उसके लौटने पर पुनः अधिकार प्राप्त हो जाते थे।[8]

काश्तकार अपना खेत अन्य किसी को किराये पर अथवा ऋण के बदले बेच भी नहीं सकता था। क्योंकि वहां की भूमि बिना जोत के पड़ी रहती थी। ऊपर से काश्तकारों पर शासकों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए कुछ नियन्त्रण लगा रखे थे। एक आसामी अपने भू–स्वामित्व के अधिकारों का प्रयोग तब तक ही कर सकता था जब तक कि वह खेत जोतता व कर चुकाता रहता था। अन्यथा उसका खेत जब्त किया जा सकता था।[9] इस प्रकार प्रत्येक काश्तकार को अपने अधिकार बनाये रखने के लिए पट्टेदारों की नीतियों का पालन करना आवश्यक था। पट्टेदार एवं किसानों के पारस्परिक सम्बन्धों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि पट्टेदार का कृषकों के साथ एक समान व्यवहार नहीं होता था। ठिकानों में जमींदार व उसके बिरादरी के लोग ही भूमि अधिकारों से सम्पन्न होते थे। क्योंकि इनका शासक वर्ग से सीधा सम्बन्ध होता था। इनके अधीन आसामियों का वर्ग होता था। वे स्वयं अथवा अन्य लोगो से काश्त करवाते थे। परन्तु इन्हें निर्धारित लगान चुकाना पड़ता था। सबसे निम्न रैय्यत वर्ग होता था, जो काश्तकारी व भूमि श्रमिक का कार्य करते थे। इन्हें ठाकुरों

द्वारा गाँव की सेवा के बदले जीविका हेतु भूमि प्रदान की जाती थी। इनकी भूमि पर अधिक दर से लगान वसूल होता था।[10]

निष्कर्ष

संक्षेप में पट्टेदार एवं कृषकों के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि 18वीं शताब्दी में 'कृषक' शब्द ऐसे खेतिहर का परिचायक था, जिसे अपने द्वारा जोती जाने वाली भूमि को बेचने या हस्तान्तरित करने का अधिकार नहीं था। उसे केवल दखलदारी का अधिकार प्राप्त था, जो सम्भवतः आनुवंशिक होता था। किन्तु कृषक अपने अस्थायी अधिकार को भी विक्रय भेंट अथवा बन्धक द्वारा हस्तान्तरित नहीं कर सकता था और एक बार खो देने के पश्चात् उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकता था। कुछ भू–भागों में पट्टेदार कृषकों के इस दखलकारी अधिकार पर भी सफलतापूर्वक विवाद खड़ा करने की स्थिति में थे। कृषकों में स्तरण के चिन्ह विद्यमान थे किन्तु उनको आसामी एवं रैय्यत दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया था। इसमें आसामी की स्थिति रैय्यत की तुलना में अधिक सुविधा सम्पन्न थी। पट्टेदार एवं कृषक का पारस्परिक सम्बन्ध सामन्ती आधार पर था। अतएव पट्टेदार कृषकों से अपने लिये अनेक उपकार वसूल करता था तथा अपने सरकारी राजस्व का बोझ भी प्रायः कृषकों पर ही डाल देते थे। इस प्रकार इनका सम्बन्ध शोषक व शोषित का था। पट्टेदार कृषकों को सुविधा देता था परन्तु अपनी शोषक भूमिका के सन्दर्भ में वह कृषकों का विश्वास प्राप्त करने में असमर्थ था।

संदर्भ

1. परवाना बही, वि.सं. 1800 (1743 ई.) राजस्थान राजकीय अभिलेखागार बीकानेर, पृ. 90–94
2. वही
3. कागदों की बही, राजस्थान राजकीय अभिलेखागार बीकानेर, पृ. 91
4. दयाल दास, ख्यात देशदर्पण, सं. गिरिजा शंकर शर्मा, रा. रा.अ. बीकानेर, 1989 पृ. 94, 101
5. कागदों की बही, फागुण बदी 6, वि.सं. 1811 (1755 ई.) बही नं. 1, रा.रा.अ.बीकानेर,
6. कागदों की बही, सं. 1827 (1790 ई.), नं. 3, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ. 44
7. कागदों की बही, सं. 1857 (1800 ई.), नं. 11, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ. 296
8. कागदों की बही, सं. 1857 (1800 ई.) नं. 11, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ. 144, 201
9. कागदों की बही, वि.सं. 1827 (1790) ई. नं. 3, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ. 44
10. कागदों की बही, फागुण बदी 6, वि.सं. 1811 (1755 ई.) बही नं. 1, रा.रा.अ.बीकानेर,